10.उपनयन सँस्कार

उपनयन-उप+नयन=उपनयन अर्थात् उप-समीप और नयन-ले जाना ।
विद्याध्ययन हेतु जब बच्चे को गुरु अथवा आचार्य के पास ले जाया जाता है तब उस बच्चे का उपनयन होता है । उपनयन सँस्कार विद्याध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व गुरु कुल अथवा माता-पिता के घर में किया जाता है । उपनयन के साथ ही बच्चा द्विज बनने की प्रक्रिया में आ जाता है । द्विज का मतलब दो बार जन्म लेना है । एक बार माता के गर्भ से तथा दूसरी बार विद्याध्ययन पूरा करके गुरु-गर्भ से । वस्तुत: विद्या की प्राप्ति के लिये ही उपनयन सँस्कार एक महत्त्वपूर्ण आरम्भिक प्रक्रिया है जिसमें बच्चे को विधिवत् द्विज बनने की प्रेरणा दी जाती है । उसे सँस्कारित करते हुये विशेषरुप से यज्ञोपवीत/जनेऊ पहनाकर उपदेश दिया जाता है कि वह ईश्वर, माता-पिता और गुरु के प्रति सदैव श्रद्धावान रहे । यज्ञोपवीत/ जनेऊ के तीन धागों की यही मूल शिक्षा है । इसके साथ की गायत्री मंत्र का भी अर्थपूर्वक ज्ञान कराया जाता है जिसमें वुद्धि-विशेष व ईश्वर-आस्था की प्रार्थना मूलरुप से निहित है जो बच्चे को नितान्त ही शुद्ध मनोभाव के साथ जोड़ने में सहायक सिद्ध होता है ।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त: ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवा: ॥ अथर्ववेद-११.५.३

इस मंत्र में यह संकेत है कि जैसे माता बच्चे को अपने गर्भ में सम्भालती है वैसे ही आचार्य भी उपनयन करके विद्याध्ययन काल तक ब्रह्मचारी (शिष्य) को इस तरह सँम्भालता है मानो वह बच्चे को अपने गर्भ में ही रखता है । गुरु का आश्रय की शिष्य के लिये मानो गर्भ है ।

उपनयन काल- आश्वलायनगृहसूत्रों (१/१९/१-६) के अनुसार महर्षि दयानन्द ने बताया कि जिस दिन बच्चे का जन्म हो उसके आठवें वर्ष में ब्राह्मण, ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय, बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें । साथ में यह भी लिख दिया कि ब्राह्मण के १६, क्षत्रिय के २२ और वैश्य के २४ वर्ष से पूर्व यज्ञोपवीत अवश्य हो जाये वरणा वे पतित मने जायेंगे । अब हम विधिगत् प्रक्रियाओं से कुछ विशेष जाने :-

१. दुग्ध-पान, दलिया या श्रीखण्ड खाना- उपनयन के निश्चित दिन से ३ या १ दिन पूर्व ब्राह्मण का बालक केवल दुग्ध-पान, क्षत्रिय का दलिया और वैश्य का बच्चा श्रीखण्ड खाये । "पयोव्रतोब्राह्मणो यवागुव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतोवैश्य:"- महर्षि दयानन्द ने यह भी कहा कि जब-जब भूख लगे तब-तब भी वे अपने नियत पदार्थ ही खायें । तीनो ही पदार्थ

बलकारक/पोषक हैं पर दुग्ध सात्विकता, दलिया राजसिकता और श्रीखण्ड स्वादपूर्णता का प्रतीक है इससे हम समझ सकते हैं कि स्वाभाविकरुप से ब्राह्मण सात्विक, क्षत्रिय राजसिक और वैश्य स्वादपूर्ति भोजन प्रधान होते हैं अत: इनके लिये क्रमश: उपर्युक्त पदार्थों का भोजन उपनयन काल में उपयुक्त ही है ।

२. उपनयन की व्यावहारिकता- पूर्व ही उपनयन का अर्थ बताया गया है । उसके अनुसार ही ब्रह्मचारी आचार्य के समीप रहकर विद्या, बल और तेज को बढाना चाहता है; साथ ही इस प्रकार कहता हुआ कि "ब्रह्मचर्यमागम् ब्रह्मचर्यसानि"पा.गृ. २.२.६ - अर्थात् हे भगवन्, मैं ब्रह्मचर्य दीक्षा हेतु आपकी शरण में आया हूँ । मुझे आशीर्वाद दीजिये -इस प्रकार वह विनम्रता, शिष्टता तथा श्रद्धा जैसे गुणों को ग्रहण करता है । तभी आचार्य उसे विधिवत् वस्त्र, उपवस्त्र धारण कराकर मंत्रोच्चारण पूर्वक तीन धागों का पवित्र यज्ञोपवीत भी धारण करवाता है ।

"ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् । आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुँच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेज: ॥
पा.गृ.सू. २.२.११"इसका अर्थ इस प्रकार है - यज्ञोपवीत परम पवित्र है । प्रजापति को यह सहज ही प्राप्त है । आयु, बल और तेज प्रदाता है । यह सदैव शुद्धता का प्रेरक है । -ऐसी प्रतिज्ञामूलक उपदेश देकर इस यज्ञोपवीत को शिष्य के गले में पहनाया जाता है । इसके तीन धागे हमें सदैव वैदिक सँस्कृति के अनुरुप ब्रह्म-श्रद्धा, पितृ-यज्ञ और गुरु-सम्मान के प्रति कटिवद्ध रहने की अनुपम प्रेरणा देते हैं ।

३. व्रत-पालन की प्रतिज्ञा- कुछ निर्धारित मंत्रों के आधार पर मंत्रों का विधिवत् उच्चारण कर ब्रह्मचारी अपने व्रत को दृढ़ करता हुआ प्रतिज्ञा करता है कि अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र तथा व्रतों के स्वामी परमात्मा के नाम प्रतिज्ञा लेता है कि ब्रह्मचर्य धर्म निभाने में सदैव समर्थ होऊँ । "तच्छकेयम्" इस पाठ का पाँच वार दुहराना मानो प्रतिज्ञा में दृढ़ता लाना है । फिर "इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि" मैं झूठ से बचूँ और सदा सत्य को ही ग्रहण करूँ-ऐसा कहना उक्त प्रतिज्ञा को और ही दृढ़ करता है । यहाँ आचार्य पूर्वाभिमुख होकर ब्रह्मचारी की उन्नति की कामना करता है । पूर्वाभिमुख होने का भाव यह है कि आचार्य चाहता है कि उसका शिष्य सदैव सूर्य की तरह प्रकाशशील, उन्नतशील, तेजस्वी तथा अपने सब कार्यों में नियमित रहे । आगे कहा गया- "अरिष्टा: संचरेमहि"-अर्थात् आचार्य और विद्यार्थी दोनों परस्पर प्रेम, अहिंसा, विकास तथा शुद्ध पर्यावरण में साथ-साथ विचरण करें । आचार्य यह भी प्रार्थना करता है कि "स्वस्ति चरतादयम्"-अर्थात् यह ब्रह्मचारी मेरे पास सदैव कल्याण ही प्राप्त करे ।

४. जलाँजलि-मोक्षण- ब्रह्मचारी की अँजलि जल से भरकर आचार्य उसकी पूर्ण रक्षा का वचन देता है । पूर्व आचार्य अपनी अँजलि को जल से भरकर फिर उस जल को शिष्य की अँजलि में छोड़ता है । जब शिष्य की अँजलि भर जाये तब उसे पृथिवि पर छोड़ने हेतु आचार्य आज्ञा देता है । उद्देश्य स्पष्ट है । अञ्जलि में जल भरना और फिर उसे पृथिवि पर छोड़वाना सीधा संकेत है कि आचार्य के समीप रहकर ऐसे ही विद्या से भरपूर होना है और सारी पृथिवि पर घूम-घूम कर पायी हुई विद्या को जग कल्याणार्थ व स्वयं की उन्नति हेतु व्यवहार में लाना है । निसंदेह जीवन के सम्पूर्ण व्यवहार में वही विद्या तो काम आयेगी ।

५. सूर्यावलोकन व आचार्य की प्रदक्षिणा- ब्रह्मचारी वहाँ पर खड़े होकर सूर्य को देखता है और अपने आचार्य की प्रदक्षिणा करता है । शिष्य यह कहना चाहता है कि वह अपने गुरु की बाहर से पूरी रक्षा करेगा, सेवा करेगा और साथ ही गुरु जी का आदर करते हुये उनसे उनकी समग्र विद्या, बल व तेज को भी धारण करेगा ।

६. अँग-स्पर्श- प्रसन्नता वस आचार्य अपने योग्य शिष्य को पूर्णतया अपना कर उसके कंधे, उदर, हृदय आदि अँगों को स्पर्श कर आशीर्वाद देता हुआ अपने सात्विक भाव-तरंगों को शिष्य के भीतर प्रवाहित कर उसे अनुकम्पित करता है । इससे शिष्य अत्यन्त श्रद्धावान् हो उठता है । यहाँ आचार्य भी पूरी तन्मयता से सँकल्प करता है कि वह विश्व की सब सम्भावित शक्तियों से एक उत्तम शिष्य का निर्माण करेगा । प्रथम प्रयास में ही दोनों के वीच सम्बन्ध पवित्रता और मजबूती पकड़ लेता है । धीरे-धीरे यह बढ़ता हुआ उद्देश्यपूर्ति का मजबूत आधार बन जाता है । आचार्य माँ की भाँति अपने शिष्य को प्रकाश मार्ग पर बढ़ते हुये सम्यक् ज्ञान देता है जो बच्चे के समग्र जीवन के उत्तम व्यवहारों को साधने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है । जैसे माँ अपने गर्भ में रखकर भी बच्चे को अपने सब व्यवहारों से उसे सीखाती रहती है, वैसे ही आचार्य भी शिष्य के साथ व्यवहार करता है । यही कारण है कि आचार्य को बच्चे की दूसरी माँ कहा जाता है । अपने सानिध्य में बच्चे को रखकर उसके सम्पूर्ण जीवन के प्रकाश व ज्ञान मार्ग को खोलने में पूरी उदारता वर्तता है ।

७. कन्याओं को भी उपनयन और वेदारम्भ का अधिकार- उपनयन सँस्कार से सँस्कारित होकर कन्या वेदाध्ययन करके विदुषी बने-यह महर्षि दयानन्द का उद्गार है । ब्रह्मचर्य का पालन करके ही गुरु के आश्रम में रहकर उपनयन से विद्या-प्राप्ति का अधिकार मिलता है । महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में इसकी पुष्टि की है कि कन्या ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करे और समय आने पर युवा पति को प्राप्त करे । अथर्ववेद ११.२.४.३- ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्- इस प्रकरण में कन्या की शिक्षा और विवाह का विषय वर्णित है । इसी तरह श्रौत सूत्रों में लिखा है- इमं मंत्रं पत्नी पठेत्- अर्थात् यह मंत्र पत्नी पढ़े । यह तभी सम्भव होगा जब स्त्री पढ़ी-लिखी होगी । वह पढ़ तब सकती है जब

इससे पूर्व उपनयन को प्राप्त हुई हो; यज्ञोपवीत धारण करने वाली कन्या व्रतपूर्वक विद्याध्ययन कर जीवन के सब व्यवहारों को जाने । यजुर्वेद में स्त्री को "स्तोम पृष्ठा" कहा गया है जिसका अर्थ है-स्त्री यज्ञ की अधिष्ठाता हो; संचालिका हो । यज्ञोपवीत/ जनेऊ को धारण करना और यज्ञ की अधिष्ठाता बनना यह स्पष्ट करता है कि विना उपनयन के कन्या को यह योग्यता नहीं मिल सकती । यह सम्पूर्ण प्रकरण स्त्री के पठन-पाठन व उसे श्रेष्ठ बनने-बनाने का ही है । इन्हीं कारणों से आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने समाज की विकृत व्यवस्था को ठीक किया और लड़का हो या लड़की दोनों को समानरुप से समाज में प्रतिष्ठित कर शिक्षा, सँस्कार व हर सामाजिक पहलु में समान अधिकार देने की बात की जो वैदिक है । अन्य मजहबों के आक्रान्त होने के कारण समाज में स्त्रिओं की यह प्रतिष्ठा लुप्त सी हो गयी थी जिसे महर्षि दयानन्द ने फिर से उन्हें दिलायी । अत: हम दोनों के लिये सब सँस्कार समान प्रतिष्ठा से ही करें ।

नोट- यह विचारणीय है कि अन्य मजहबों में भी इस सँस्कार का उल्लेख मिलता है । वैदिक धर्म से ही वहाँ पहुँचा है । जैसे- पारसी में यह "कुस्ती" कहलाता है । मुस्लिम मत में यह " बिस्मिल्ला पढ़ना" कहा जाता है । इसमें बच्चों को "बिस्मिल्ला ईर्रहमान ईर्रहीम" पढ़ने को कहा जाता है । जैसे वैदिक धर्म में "गायत्री मंत्र" पढ़ने/बोलने के लिये कहा जाता है । ईसाइयों में इसे "बप्तिस्मा" (बैप्टिज्म) कहा गया है । यूनानि भाषा में इसका अर्थ इस तरह पाया जाता है- "पुनरुत्पति" । यह शब्द वैदिक शब्द द्विज का समानार्थक है । उपनयन के वाद ही वच्चा द्विज बनता है ।

Upanayana kaa Mantra vidhi bhaaga